माया में न उलझें, जीवन को उद्देश्य की दिशा दें

दुनिया में रहिए, लेकिन दुनिया में खो मत जाइए.
सफलता प्राप्त कीजिए, लेकिन सफलता का अहंकार मत कीजिए.
धन कमाइए, लेकिन धन को ही सुख का एकमात्र मापदण्ड मत बनाइए.
रिश्तों को महत्व दीजिए, लेकिन उनके भीतर अपनी पहचान मत खोइए.

जीवन का अंतिम उद्देश्य केवल सफल होना नहीं होना चाहिए. उद्देश्य ऐसा मनुष्य बनना होना चाहिए, जिसे परिस्थितियां आसानी से बदल या पराजित न कर सकें. भय, तुलना और लोगों की राय को अपनी दिशा निर्धारित करने की अनुमति मत दीजिए. जीवन का मूल्य इस बात से नहीं तय होगा कि कितने लोगों ने आपका समर्थन किया. वास्तविक महत्व इस बात का है कि कठिनाइयों के सामने आपने कैसी प्रतिक्रिया दी, कितनी ईमानदारी से अपने लक्ष्य का पीछा किया और उस यात्रा के दौरान स्वयं में कितना परिवर्तन लाया.

भूमि परत भा ढाबर पानी.
जनु जीवहिं माया लपटानी ॥

इन पंक्तियों में मानव जीवन का अत्यन्त गहरा दर्शन छिपा है. जिस प्रकार धरती पर गिरा पानी धीरे-धीरे उसी में समा जाता है और अपना अलग अस्तित्व खो देता है, उसी प्रकार मनुष्य भी जब माया—अर्थात् मोह, आसक्ति, भ्रम और सांसारिक उलझनों—में अत्यधिक लिप्त हो जाता है, तो धीरे-धीरे अपने वास्तविक स्वरूप, उद्देश्य और आन्तरिक शक्ति को भूल सकता है.

डॉ. मुकेश नायक

यह संदेश केवल आध्यात्मिक जीवन तक सीमित नहीं है. आधुनिक जीवन में भी इसका उतना ही महत्व है. आज मनुष्य महत्वाकांक्षा, रिश्तों, आर्थिक चिन्ताओं, सामाजिक अपेक्षाओं, दूसरों से तुलना और असफलता के भय के बीच स्वयं को कहीं पीछे छोड़ देता है.

आज की सबसे बड़ी समस्या अवसरों की कमी नहीं, बल्कि मन की एकाग्रता का अभाव है. व्यक्ति इस बात में उलझ जाता है कि दूसरे उसके बारे में क्या सोचते हैं, कौन उससे आगे निकल गया, आर्थिक स्थिति कैसी है, रिश्तों में उसे कितना महत्व मिल रहा है या एक असफलता उसके भविष्य के बारे में क्या कहती है. यही दैनिक जीवन में 'माया लपटानी' का स्वरूप है.

माया केवल धन और भौतिक सम्पत्ति का नाम नहीं है. जिस वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति या विचार से मन इतना बंध जाए कि मनुष्य अपने उद्देश्य को ही भूलने लगे, वही उसके लिए माया का रूप ले सकता है.

यदि कोई व्यक्ति जीवन में आता है और बाद में दूर चला जाता है, तो उसका दु:ख स्वाभाविक है. लेकिन यदि उसके चले जाने के बाद हम अपने सपने ही छोड़ दें, तो समस्या केवल उस व्यक्ति की अनुपस्थिति नहीं है; समस्या यह है कि हमने अपनी पहचान किसी दूसरे से जोड़ दी थी.

धन कम है तो अधिक परिश्रम कीजिए. सफलता नहीं मिल रही तो अपनी कार्यपद्धति बदलिए. लोग साथ नहीं दे रहे तो अपने पैरों पर खड़ा होना सीखिए. बार-बार असफलता मिल रही है तो अपनी कमजोरियों को पहचानकर उन पर काम कीजिए. लेकिन किसी परिस्थिति को अपनी पहचान मत बनने दीजिए. परिस्थितियां आपको परिभाषित नहीं करतीं. असफलताएं आपका भविष्य तय नहीं करतीं और दूसरों की राय आपका मूल्य निर्धारित नहीं करती.

जीवन में ऐसे दौर भी आते हैं, जब आगे बढ़ने का कोई रास्ता दिखाई नहीं देता. लेकिन कठिन समय अक्सर उन क्षमताओं को सामने लाता है, जिनका हमें स्वयं भी पता नहीं होता. जिसने संघर्ष नहीं किया, वह अपनी वास्तविक क्षमता को शायद ही पहचान पाए. इसके विपरीत जो व्यक्ति गिरकर उठता है, असफल होकर फिर शुरुआत करता है और अकेलेपन में भी अपने सपनों को जीवित रखता है, वह जीवन को कहीं अधिक गहराई से समझता है. इसलिए कठिन समय को हमेशा दण्ड नहीं समझना चाहिए. कई बार कठिन परिस्थितियां भविष्य की तैयारी होती हैं. हो सकता है कि आज जो परिस्थितियां आपको रोकती हुई दिखाई दे रही हैं, वही कल आपको बड़ी जिम्मेदारियों के लिए तैयार कर रही हों. साधन सीमित हो सकते हैं, लोग आपको गंभीरता से न लेते हों, आपके परिश्रम के परिणाम अभी दिखाई नहीं दे रहे हों और आपके निकट रहने वाले लोग भी आपके सपनों पर विश्वास न करते हों. फिर भी यदि आपको अपने उद्देश्य पर विश्वास है, तो प्रयास जारी रखना चाहिए लेकिन उद्देश्य के साथ स्पष्टता भी आवश्यक है. स्वयं से एक प्रश्न पूछिए—मैं वास्तव में चाहता क्या हूं? जब इसका उत्तर स्पष्ट हो जाता है, तब अनेक अनावश्यक आकर्षण और उलझनें स्वत: पीछे छूटने लगती हैं.

क्लास by बड़े भाई

इनका हमेशा सम्मान करिये

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

छोटे भाई, अगर हम कभी विचार करें तो पाएंगे कि हमारे पास बहुत कुछ ऐसा है जो किसी का दिया हुआ है और जिसके लिए इसे देने वाले ने हमसे कभी धन्यवाद की अपेक्षा नही की.. बहुत कुछ जिसके लिए हम बड़ा इतराते हैं.. आज हम इसी पर चर्चा करेंगे..

छोटे भाई, मेरे दादा जी शिक्षक थे.. मैं उनके साथ एक लम्बे समय तक रहा हूँ.. शायद मैंने कभी आपको बताया भी हो.. वो हमेशा एक बात कहते थे कि इस दुनिया में दो लोगों की हमेशा क़द्र करना.. उनका सम्मान करना क्योंकि उनका सम्मान करना ईश्वर का सम्मान करना है.. कभी भी उन्हें मत भूलना..

उन्होंने दो में पहला बताया था.. जिसने हमें कुछ बेहतर सिखाया हो और दूसरा वो जिसने तुम्हें अवसर दिया हो..

उन्होंने कहा इन्हीं दो लोगों ने हमारे जीवन को शानदार बनाया है.. हमारे जीवन को दिशा दी.. जिन्होंने हमें काबिल बनाया फिर काम दिया.. विचार करके देखिये हमारी जीवन यात्रा के पग पग में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से इनका ही योगदान है..

क्या हमें इन्हें भूलना चाहिए.. ? हमारा भी कर्त्तव्य है कि इनको ध्यान में रखें और हम भी कभी ऐसा ही करें.. हम भी कभी किसी को कुछ बेहतर सिखाने का माध्यम बने या किसी को कुछ अवसर देने का माध्यम बनें.. किसी की मुश्किलें आसान करें.. मेरे विचार से उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का सबसे सुन्दर तरीका हो सकता है.. यह सबसे बेहतर तरीका हो सकता है जिसके इसी तरीके से हमने पाया था.. आज यह पढ़ने के बाद गिनती करियेगा कि आपके पास क्या है जो इन दोंनो से नही मिला है क्योंकि इसी की गिनती संभव है.. जो मिला है उसकी तो गिनती ही नही है..

बस यही कहना था.. धन्यवाद

पुस्तक चर्चा

रत्न, सट्टा और रिश्तों के बीच बसता जयपुर

किसी भी शहर को समझने के दो रास्ते होते हैं. पहला रास्ता इतिहास तो दूसरा साहित्य की ओर. इतिहास हमें बताता है कि शहर कब बसा, किसने बसाया, किसने उस पर शासन किया. लेकिन किसी शहर का स्वभाव, उसकी आत्मा, उसकी स्मृतियाँ और उसके लोगों का मन साहित्य सामने लाता है. इतिहास शहर का शरीर रचता है, साहित्य उसकी आत्मा. हर प्राचीन नगर की अपनी एक सांस्कृतिक देह है. बनारस आज भी गंगा, घाट, पान, चाट, गलियों की भूलभुलैया और ठगों के किस्सों के साथ जीवित है. लखनऊ अपनी तहज़ीब, अदब, नवाबी ठाठ और बतकही के कारण आज भी अलग पहचान रखता है. कोलकाता का बौद्धिक संसार उसके कॉफी हाउसों और पुस्तक बाज़ारों में बसता है. हैदराबाद ईरानी चाय और चारमीनार के बिना अधूरा है।

नवल पाण्डेय

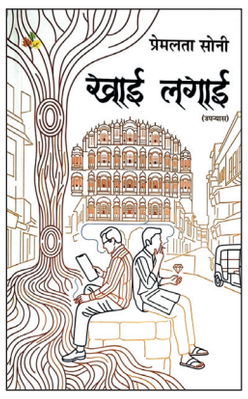

खाई-लगाई (उपन्यास)
प्रेमलता सोनी
शिवना प्रकाशन, सीहोर (मप्र)
मूल्य- 300 रूपए

जयपुर जितना स्थापत्य कला के कारण प्रसिद्ध है, उतना ही अपने जीवित सामाजिक जीवन से भी. पुराना जयपुर, जहाँ सुबह मंदिरों की घंटियाँ बजती हैं, दोपहर को रत्नों की मंडियाँ सजती हैं, शाम को चाय की दुकानों पर बहसें होती हैं और रात होते-होते सट्टे के भाव बदल जाते हैं. चारदीवारी का जयपुर अपने भीतर अनेक शहरों को समेटे हुए है. जौहरी बाज़ार का अपना स्वभाव है, किशनपोल की अपनी लय, चाँदपोल का अपना इतिहास और त्रिपोलिया की अपनी स्मृतियाँ. देवड़ीजी का मंदिर, गोपालजी का रास्ता, हल्दियों का रास्ता, बड़ी चौपड़, छोटी चौपड़, मोती डूंगरी, गलता और आमेर—ये सब केवल भौगोलिक स्थान नहीं, बल्कि सांस्कृतिक प्रतीक हैं. इन रास्तों पर चलते हुए लगता है कि शहर अपनी स्मृतियों के साथ आज भी जीवित है. इसी जीवित जयपुर को प्रेमलता सोनी अपने नवीन उपन्यास 'खाई लगाई' में हमारे सामने लाती हैं. यह ऐतिहासिक जयपुर की कथा नहीं कहता, बल्कि समकालीन जयपुर का आख्यान रचता है जो भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद और बदलते सामाजिक मूल्यों के बीच अपनी पहचान से जूझ रहा है. शीर्षक जिज्ञासा पैदा करता है. 'खाई लगाई' सट्टेबाज़ी की दुनिया का प्रचलित शब्द है. जो व्यापक सामाजिक रूपक में बदल जाता है. केवल क्रिकेट मैच पर दाँव नहीं लगाया जा रहा, बल्कि मनुष्य अपने रिश्तों, विश्वास, नैतिकता और भविष्य तक को दाँव पर लगा रहा है. लेखिका का उद्देश्य केवल पात्रों की निजी कथा कहना नहीं है. वे इनके माध्यम से पूरे शहर के बदलते सामाजिक चरित्र को पकड़ना चाहती हैं. नारायणी पूड़ियाँ बेलकर अपना जीवन चलाने वाली यह स्त्री उस भारत का प्रतिनिधित्व करती है जो आज भी श्रम पर विश्वास करता है. उसके सामने आसान पैसे का आकर्षण है, सट्टे की चमक है, लेकिन वह अपनी मेहनत की कमाई नहीं छोड़ती. दूसरी ओर करोड़ों रुपये के खेल में उलझे लोग हैं जो एक झटके में सब कुछ पाने की आकांक्षा रखते हैं. यह विरोधाभास दो व्यक्तियों का नहीं, दो जीवन-दृष्टियों का है. ओमी का चरित्र भी इसी सामाजिक संक्रमण का प्रतिनिधि है. वह न पूरी तरह नायक है, न खलनायक. उसमें इच्छाएँ हैं, असफलताएँ हैं, भ्रम हैं और कमजोरियाँ भी।

> उपन्यास का वास्तविक आकर्षण उसके पात्रों में नहीं उसके परिवेश में है. लेखक ने जयपुर को जिस आत्मीयता से रचा है, वह इस उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि है. भाषा की दृष्टि से भी उपन्यास उल्लेखनीय है. भाषा सहज है, प्रवाहमयी है . संवाद स्वाभाविक और स्थानीय जीवन की गंध लिए हुए हैं. उपन्यास में किसी पात्र का चेहरा नहीं, बल्कि जयपुर का चेहरा है. उसकी गलियाँ, बाज़ार, मंदिर, हवेलियाँ, चाय, समोसे, उसकी रत्न मंडी, उसका सट्टा बाज़ार और उन सबके बीच संघर्ष करता साधारण मनुष्य. 'खाई लगाई' सट्टेबाज़ी का नहीं, मनुष्य और शहर के बदलते संबंधों का उपन्यास है. जो हमें बताता है कि शहर केवल सड़कों और इमारतों से नहीं बनते; वे स्मृतियों, संघर्षों, इच्छाओं, विश्वासों और संबंधों से बनते हैं. और जब कोई लेखक अपने शहर की इन अदृश्य परतों को शब्द दे देता है, तभी साहित्य जन्म लेता है।

अपने ही बनाए साँचे बार-बार तोड़ना पड़ते हैं

आयोजन

लिटरेचर क्लब देवास की गोष्ठी में सार्थक चर्चा

हर रचनाकार को अपने ही बनाए साँचे बार-बार तोड़ने होते हैं, तभी वह बेहतर की तरफ़ बढ़ सकता है. हास्य कविता की गम्भीरता को कमजोर करता है. फैब्रिकेटेड कहानी अपनी सहजता खो देती है.

लिटरेचर क्लब की मासिक गोष्ठी में प्रतिष्ठित कथाकार मनीष वैद्य ने चर्चा में ये बातें कहीं. पहले सत्र में पढ़ी गई विभिन्न विधाओं की पुस्तकों पर बातचीत हुई. दूसरे सत्र में दिए गए विषयों पर आयी रचनाओं पर अमेय कांत ने अपनी पारखी राय दी . आपने कविता के फ़लक को बड़ा करने के लिए कम शब्दों में ज्यादा महसूस कराने की जरूरत पर बल दिया. आपने वर्तनी और भाषागत अशुद्धियों पर सूक्ष्मता पूर्ण ध्यान देने की हिदायत भी दी।

रचना पाठ के तीसरे सत्र को शांतनु बहरे ने बखूबी संभाला उर्वशी उपाध्याय , दारा सिंह चंदेल,छाया कानूनगो ,वंदना शर्मा की कविताओं के बहाने नए बिम्बों,नए कहन, शिल्प, कवितापन पर अच्छी चर्चा हुई . कुसुम वागडे की कविता को काफी पसंद किया गया. रश्मि शर्मा और मीनाक्षी दुबे द्वारा कहानी पाठ किया गया . भावेश कानूनगो ने व्यंग्य सुनाया . मनीष शर्मा ने विधा के आपस में संक्रमण की तरफ़ ध्यान आकर्षित किया और संबंधित विधा को ध्यानपूर्वक पढ़ने की जरूरत को रेखांकित किया .

मनीष वैद्य ने एक अच्छे रचनाकार के लिए हर विधा के अध्ययन से भाषा, कहन, संवेदना दृष्टि में व्यापकता को बड़ा हासिल बताया . उन्होंने कहा कि कहानी लिखने वाले को कविता और कविता लिखने वालों को कहानियाँ और उपन्यास पढ़ना चाहिए.

गोष्ठी में रचनात्मक ऊर्जा संसार को बनाए रखने के लिए आगामी कार्यक्रमों को पिछली सफलताओं की तरह ही आयोजित करने के लिए जिम्मेदारियाँ तय की गई. दिलीप निगम ,अलका निगम, नरेश कानूनगो,हिमांशु कुमावत,मंजू जैन ,शकुंतला दुबे, कृपाली राणा, लव पाठक ने भी रचनाओं पर महत्वपूर्ण टिप्पणी दी।

(रश्मि शर्मा जोशी की कलम से)

शुरुआत

मार्टिन जॉन

तपती दुपहरिया में आग उगलते सूरज से बेपरवाह , पसीने से सराबोर उन दोनों को अपनी बगिया में कड़ी मेहनत करते देख मैं जज्बाती हो गया 7 दिलो-दिमाग में विचारों की आवाजाही शुरू हो गई 7 संवेदना हरहराने लगी 7शाम ढलने के साथ उथल-पुथल मचाती भावनाएं कविता की शक्ल में का ? ? पर उतर गईं 7 दिन भर की मजदूरी देने के पहले मेरी दिली इच्छा हुई कि उन दोनों को , उन्हीं पर लिखी कविता सुनाई जाए 7

काम खत्म होने के बाद अपनी छोटी सी लाईब्रेरी में उन्हें बिठाकर बड़े उत्साह के साथ हमने कहा , सुनो , हमने तुम दोनों पर एक कविता लिखी है .

ई का होत है बाबूजी ? दोनों के समवेत ,जिज्ञासु स्वर ने मेरे उत्साह पर हथौड़ा चला दिया, शुरू में ही .

अरे भाई , गांव-घर में दोहा , चौपाई , गीत वैगरह सुनते हो न ?.....बस , कुछ इसी तरह की चीढ़ है . .....सुनाऊं ? इससे का फायदा होगा ?....कौनो पेट भरने का चीज तो है नहीं ! देखो , इसे मैं पत्रिका में छपवाऊंगा 7 सामने पड़ी पत्रिका की ओर इशारा करते हुए कहा , छपने के बाद इसे लोग पढेंगे , तुमलोगों की बारे में जानेंगे .....आंधी-तूफान , सर्दी-गर्मी में भी मजदूर भाई अपने काम मे कैसे डंटे रहते हैं , इसका एहसास उन्हें होगा . तो , का हमरे खून-पसीना के बारे में लोग अभी तक नहीं जानते हैं ?

जानते हैं जरूर . इसे पड़कर शिद्दत से तुमलोगों की मेहनत को महसूस करेंगे 7 तुमलोगों की स्थिति पर गंभीरता से सोचेंगे 7 लोगो की सोच में बदलाव आएगा तो तुमलोगों की जिन्दगी में भी बदलाव आएगा . तो इसका सुरुआत आप ही कर दो न बाबूजी !

मैं पलभर के लिए अचकचाया . थोड़ा गुस्सा भी आया. लेकिन मैं उन्हें अपनी कविता सुनाने की जिद पर अड़ा हुआ था . सो, खुद को संयत किया , कैसी शुरुआत चाहते हो . हमलोगन का मजदूरी बड़ा दीजिए न ...इससे थोड़ा बहुत बदलाव आ जाएगा !

मेरी परिवर्तनकामी चेतना निरुत्तर होकर बगले झांकने लगी . सृजन की जमीन पर बेरहमी से कुदाल चलते देख काग ? पर उतरी कविता की कुटील मुस्कान मेरा मुंह चिढा रही थी .

लघुकथा

डायबिटीज

कहानी

रेखा शाह आरबी

'आओ नर्मदा.. आओ बैठो .. यहां पर धूप है..थोड़ा आराम मिलेगा, आजकल इस दिसंबर की ठंड में धूप भी भगवान की नेमत है वरना इंसान कांप-कांप कर ही मर जाए..और हम जैसो के लिए तो यह और मुसीबत करती है '।

पैसठ वर्षीय शीला अपनी हम उम्र पड़ोसन नर्मदा से बोली।

शीला ने कुर्सी खींचकर नर्मदा को बैठने के लिए दिया . नर्मदा शीला की पड़ोसन थी दोनों बहू बेटों वाली थी. इसीलिए घर की ज्यादा जिम्मेदारियां नहीं थी. खाली होने पर एक दूसरे से अपने दुख सुख बतियाया करती थी. या समय गुजारने के लिए भी एक दूसरे से बात कर लिया करती थी।

आज भी खाली देखा तो नर्मदा को कुछ देर अपने पास बात करने के लिए बुला लिया और नर्मदा भी चली आई।

नर्मदा का मिजाज थोड़ा-थोड़ा खिंचा हुआ देखकर शीला ने पूछा-' क्या हुआ है कोई बात है ? क्या आज तुम्हारा चेहरा उतरा हुआ है वरना रोज तो बहुत मुस्कुराती रहती हो '।

' अरे कुछ नहीं शीला दीदी आज रोहित की बहू जाने उसके मन में क्या था थोड़ी सी दो बातें क्या कह दी पलट कर उल्टा जवाब देने लगी '।

' अरे नर्मदा आजकल जमाना ही ऐसा है बहू को कितना भी करो और अपनी सारी जीवन की कमाई दे दो ..लेकिन बहु तो बहु होती है शर्म, लिहाज, त्याग की उनसे अपेक्षा करना ही बेकार है.. इसीलिए तुम अपना मन दुखी मत करो दूसरे के जायी(बेटी) से क्या ज्यादा उम्मीद करना.. '. शीला सांत्वना देते हुए बोली।

अंदर से चाय लेकर दोनों के लिए आती हुई शीला की बहू पूजा ने यह बातें सुनी तो उसे बहुत ही दुख हुआ. आज इतने वर्षों से सास और ससुर की सेवा कर रही हूं . उसके बावजूद भी इनकी सोच में जरा भी बदलाव नहीं हुआ।

उसने सोच लिया कि इस बात का इन्हें एहसास करा कर रहूंगी की बहू भी त्याग करती है और वह भी परिवार के लिए अपना सब कुछ न्योछावर करती है।

घर में सब्जी लाने के लिए शीला के पति रतन जी ही जाते थे. रात में सब्जी बनाने के लिए वही सब्जी लेकर आए थे. और आज सब्जी में वह फूल गोभी और मटर लेकर आए थे. शीला और रतन जी को पूजा के हाथ की बनी हुई गोभी, मटर ,टमाटर की सब्जी बहुत पसंद आती थी।

पूजा ने बहुत ही पसंद से आलू ,फूलगोभी, मटर की मसाले डालकर सब्जी बनायी . सब्जी बेहद स्वादिष्ट बनी थी . पूरा घर खुशबू से महक रहा था ।उसने अपने सास और ससुर दोनों के लिए एक साथ ही भोजन निकाला और ले जाकर उनके आगे परोस दिया. शीला और रतन जी दोनों हाथ धोकर खाने के लिए भोजन पर बैठे. थाली में सब्जी रोटी सलाद पूजा ने परोसा था. सब्जी की कटोरी देखते ही शीला चौंक पड़ी. क्योंकि आज खाना परोसते समय पूजा ने सिर्फ हरी सब्जियां छांट कर परोसने के बजाय कटोरी में आलू भी साथ में परोसा था. जबकि आज से पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ था. हमेशा बनी तरकारी से छांट कर हरी सब्जियां ही परोसती थी. क्योंकि उसे पता था कि दोनों लोग डायबिटीज है और इन लोगों के लिए आलू नुकसान देह है. उस समय तो शीला ने कुछ नहीं कहा और आलू किनारे करके चुपचाप खाना खा लिया. रतन जी ने भी आलू किनारे करके खाना खा लिया. लेकिन खाना खाने के बाद शीला सीधे पूजा के पास पहुंची और बोली-' पूजा यह आज तुमने कैसे सब्जी निकाली थी तुमको पता है ना ..हम दोनों लोगों को डायबिटीज है और हम दोनों लोग सब्जी में कभी भी आलू नहीं खाते हैं.. डॉक्टर ने हम दोनों को ही आलू खाने से मना किया है.. इसके बावजूद आज तुमने सब्जी में हमको आलू भी दे दी थी '।

' मम्मी जी.. मुझे पता है कि आप और पापा जी डायबिटीज के पेशेंट है.. लेकिन शायद आप लोगों को नहीं पता है कि.. मैं ऐसी किसी भी बीमारी की पेशेंट नहीं हूं जिसमें मुझे सिर्फ आलू की सब्जी खाने के लिए कहा जाए ..और आज तकरीबन दस साल जब से बहू बनकर इस घर में आई हूं. . तब से घर में जब भी सब्जी बनती है तो उसमें से हरी सब्जी आप दोनो को निकाल कर देने के बाद पतिदेव और बच्चों को खाना देने के बाद.. मेरे हिस्से में ज्यादातर आलु ही आता है .. और मुझे आलू खाना पड़ता है.. आज से मैं यह त्याग करना छोड़ रही हुं... और मै तो बहू हुं और बहु भला कहा त्याग करती है .. और आप भी तो इस बात को मानती है '।

शीला पूजा की बातें सुनकर बेहद ही शर्मिंदा हो गई. और उसने शांत मन से विचार किया तो उसे अंदर से बेहद शर्मिंदगी हो रही थी. कि बताओ दस साल से बहु हम दोनों के लिए इतना त्याग कर रही है . और मैं उसकी इस अच्छाई और त्याग की कदर भी ना कर सकी. मां बनना तो दूर मैं तो उसकी एक अच्छी सास भी ना बन सकी . अगर मैं औरत बन कर भी इस बारे में सोची होती तो मुझे अपने बहू की तकलीफ जरूर दिखाई दे जाती ।इतना करने के बाद भी मैं सुबह नर्मदा से उसकी बुराई ही कर रही थी. वह शर्मिन्दगी के साथ बोली - 'बहु मुझे माफ कर दे मेरे अंदर बड़ी होकर भी बड़प्पन नहीं था और तू मुझसे बहुत छोटी होकर भी एक बेटी से भी ज्यादा हम लोगों के बारे में सोची '।

' अरे मां जी आप मुझसे माफी मत मागिंए.. मैं तो बस आपको यह एहसास दिलाना चाहती थी की बहू भी त्याग करती है.. और अनेक तरीकों से करती है.. हां बस उसके उन कामो लिए दो शब्द अच्छे मिल जाए तो वह उसे पुरस्कार के जैसे लगते हैं और वहीं पर यदि ताने मिले तो उसे उन कामों को करने में अरूचि उत्पन्न हो जाती है..और हर बच्चे को मां-बाप से शाबाशी और पुरस्कार की आशा रहती है कुछ करने के बदले .. बहु हुई तो क्या हुआ मेरा भी इतना तो हक है. 'कहकर शीला के गले लग गई।

'तुम्हारा हक इससे ज्यादा है और सुनो कल से तुम्हें सिर्फ आलू खाने की जरूरत नहीं है.. कल से तुम्हारे पापा जी से कहकर हरी सब्जियां ज्यादा मंगवाया करूंगी ताकि सभी स्वस्थ रहें '।

कविता

लोकनाथ (संतोष कुमार द्विवेदी)

ओ मेरे!

कैंसर में कुनैन की गोली की तरह
व्यर्थ हो जाए जब
सारा जिया-किया

वक्त के साथ परछाईं की तरह
परिवर्तित होने लग जाएं देव प्रतिमाएं

तुम कहो राम और सुना जाए मरा
'र' में बड़ा 'आ' की मात्रा 'रा'
और छोटा 'म' मिलाकर बोलो 'राह्यह्यम'
समझा-समझा हो जाओ जब नाकाम

अश्वत्थामा हतो ! अश्वत्थामा हतो !!
के तुमुल निनाद में डूब जाए जब
'नरो वा कुंजरो' की जिज्ञासा

कुलगुरु हो जाएं जब कुल भ्रष्ट
तब शब्दों के अर्थ और आशय को
ध्यानपूर्वक समझना प्रिय
कालनेमियों के भाष्य से भ्रमित मत होना

ओ मेरे !
तुम तब भी बने रहना अटल
मृत्यु की तरह अकाट्य
सत्य और सनातन।

भाषा

इतिहास का सारा झूठ
भाषा में बोला गया
भाषा में ही दी गईं गालियां

वही भाषा जिसमें हमने
सबसे पहले 'मां' बोला
फिर मां से बोला
फिर दुनिया से

प्रेम का इजहार किया
प्रार्थनाएं बुदबुदाईं

आदमी की सारी अच्छाई,
और उसके भीतर की सारी बुराई
सबसे पहले भाषा में ही
होती है प्रकट

भाषा मन का प्रतिबिंब है
जिसमें देखता हूं मैं तुम्हारा चेहरा।

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी